Since March 2002
A National, Registered & Refereed Monthly Journal : Research Paper
Research Link - 172, Vol - XVII (5), July - 2018, Page No. 77-79
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

भारतीय राजनीतिक चिन्तन में संस्कारों की उपादेयता

प्रस्तुत शोधपत्र, भारतीय राजनीतिक चिन्तन में संस्कारों की उपादेयता पर आधारित है। व्यक्ति के असंस्कृत स्वरुप को सुसंस्कृत और अनुशासित करने के निमित्त संस्कारों की अभिव्यक्ति की गई है। संस्कार व्यक्ति के मस्तिष्क व भावनाओं को सुव्यवस्थित परस्पर सहयोगी एवं पारदर्शी, ईमानदार व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। इन विशेषताओं को धारण करके प्रत्येक व्यक्ति अपनी नागरिक भूमिका का श्रेष्ठ निर्वहन कर पाने में समर्थ होता है। भारतीय राजनीतिक चिन्तन राज्य के साथ-साथ नागरिकों हेतु भी श्रेष्ठ आचार संहिता का प्रबंध करता है, कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था का समर्थन करता है, ताकि श्रेष्ठ नागरिकों एवं श्रेष्ठ राजत्व की स्थापना हो सके। वर्तमान विश्व की सभी समस्याएँ कुसंस्कारिता की उपज है। आतंकवाद, यौन अपराध, प्रदूषण सभी के पीछे व्यक्ति की संस्कारहीनता प्रकट होती है। भारतीय प्राचीन व अर्वाचीन सभी श्रेष्ठ राजनीतिज्ञों, समाज सेवियों के जीवन में संस्कारों की सुवास उठती दिखाई देती है। आवश्यकता है कि आज भी संस्कारों की इस महत्ता को समझा जाए व श्रेष्ठ नागरिकता व उच्च राजनीतिक स्तर के निर्माण में संस्कारों का लाभ उठाया जाए।

कुँजी शब्द : राजनीतिक चिन्तन, राजनेता के गुण, संस्कार एवं उनका प्रभाव।

डॉ.प्रज्ञा पारीक

परिचय :

अलगाव, आंतक, अस्थिरता और अव्यवस्था से जर्जरित मानव सभ्यता न केवल त्रस्त है, बल्कि भयग्रस्त हो सहमी खड़ी है। उसे आशंका है कि पतन और विनाश कहीं उसे अपने मृत्युपाश में न बाँध ा ले। यन्त्रीकरण और औद्योगीकरण की प्रगति में छुपी अवगति साफ झलकने लगी है। विज्ञान और अन्तर्राष्ट्रीय विधान अपनी असमर्थता का अहसास कर विवश है। प्रत्येक राष्ट्र अपने ही चुने राजनीतिज्ञों के हाथों दुर्दशा और युद्वों की ओर धकेला जा रहा है। राजनीति से नीति विलग हो चुकी है। इन व्यथापूर्ण क्षणों में विचारशील व्यक्तियों की दृष्टि फिर से धर्म एवं दर्शन की ओर घूमी है। इस सम्भावित आशा के साथ की ये अपने सृजन कौशल से कुछ अपूर्व कर दिखायेंगे, किन्तु विडम्बना–धर्म मूढ़ताओं से ग्रसित है। चित्र–विचित्र मान्यताओं, कुरीतियों, कुप्रथाओं की मेघमालाओं ने इस सूर्य को आच्छादित कर लिया है और दर्शन, वह जीवन से नाता तुडाकर बुद्वि की भूल–भुलैया में फंसा है, तब ही तो हम हर क्षण शोध और अनुसंधान करके भी उस प्राण तत्व को पाने में असक्षम है, जो वर्तमान विकट परिस्थितियों का समाधान कर सके, लेकिन भारतीय चिन्तन इतनी निरीह और मूढ़ नहीं है। वह दूरदर्शी है इसलिए हमारे ऋषियों ने हमें संस्कारों की परम्परा दी जो मनुष्य जन्म के बाद उसे मनुष्यता प्रदान करने में सक्षम है।

'योग्यतां चादधानाः क्रियाः संस्कारा इत्युच्यन्ते' (1)

अर्थात् संस्कार वे क्रियाएँ तथा रीतियाँ हैं, जो मनुष्य को मनुष्यता की योग्यता प्रदान करती है। वर्तमान युग की, समय की सर्वप्रथम मांग है कि मनुष्य–मनुष्यता को प्राप्त कर मात्र कायिक ही नही आचरणीत मनुष्य बने तत्पश्चात् वह शासक–अधिकारी–कर्मचारी या शासित (नागरिक) बने सर्वप्रथम नींव का मजबूत होना अत्यावश्यक है। इस आवश्यकता की पूर्ति हमारी प्राचीन ऋषि प्रणीत संस्कार परम्परा करती है, जिसे क्रमवार सोलह चरणों में सृजित किया गया है। जिससें सद्विचारों का उद्भव, विकास एवं क्रान्ति में मानव के उदय के साथ विचारों का उदय, विस्तार के साथ भयावह भ्रष्ट परिस्थितियाँ बदल देने की क्षमता जाग्रत होती है।

इन दिनों भारतीय समाज, धर्म, अर्थ, संस्कृति, पर्यावरण आदि सभी क्षेत्रों में अनेक समस्याएँ सुरसा सी विशालकाय होती जा रही हैं, परन्तु समाधान के प्रश्न पर सबकी दृष्टि देश के राजनीतिक कर्णधारों पर टिक जाती है, मानों संसद से अथवा विधानसभाओं से कोई चिरागी जिन्न प्रकट होगा और ये समस्याएँ समाप्त हो जाएगीं। लेकिन तस्वीर का दूसरा पहलू है, स्वयं समस्या बनती पथभ्रष्ट, दिग्भ्रमित राजनीति। जब बाड़ ही खेत को खा रही हो तो रखवाला कौन, ऐसे में बाड़ पर लगी सर्वनाशी अमरबेल को जड़मूल से नष्ट करने, बाड की भूमि को शोधित करने में ही समझदारी है। उलटे को उलटकर सीधा कर देने की चमत्कारी प्रक्रिया, संस्कार पद्वति ही है जिसे राजनीतिक चिन्तकों महर्षि मनु, आचार्य कौटिल्य एवं स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मनुष्य जीवन में ही नहीं, राजनीतिक जीवन में भी आवश्यक माना है। मनुस्मृति, अर्थशास्त्र और सत्यार्थ–प्रकाश, संस्कार–विधि आदि ग्रन्थ राजा व प्रजा के लिए संस्कारों की अनुशंसा करते हैं। वर्तमान सत्तासीन राजनेताओं को कर्त्तव्य परायण, पूर्ण

सहायक आचार्य, बाबा श्याम ऋषि संस्कृति पी.जी.महिला महाविद्यालय, खाटूश्यामजी, सीकर (राजस्थान)

उत्तरदायी, पारदर्शी, चरित्रनिष्ठ बनाने के लिए संस्कार परम्परा कारगार सिद्वहो सकती है और आज के भ्रष्ट, दलबदलू, गैरजिम्मेदार, आपराधिक सोचवाले राजनैतिक वातावरण में तो संस्कारों की महत्ता और भी बढ़ जाती है।

राजनैतिक चिन्तन में संस्कारों की अवधारणा :

भारत विश्व में एक नैतिक चरित्र एवं मानवीयता के उत्कृष्ट आदर्शों वाला राष्ट्र रहा है। इस देश में धर्म नैतिकता व उच्चादर्शो की घुट्टी शिशु को पिलाई जाती थी। फलतः इस देश के नेता और नागरिक देवत्व के उच्च शिखरों पर पदासीन होते थे। भारत में व्यक्ति–निर्माण का मूलाधार है, 'सोलह संस्कार'।[2]

मनु, कौटिल्य व दयानन्द के देश में नीति के सहारे किया जाने वाला राज या शासन ही राजनीति कहलाता था, पर वर्तमान समय की विडम्बना है कि यह शब्द राजनीति स्वयं ही नीति से कोसों दूर होकर पूर्णतया बदनाम हो गया है। आज राजनीति से तात्पर्य अपनी स्वार्थ सिद्धि करना, ठगी करना बल व ऐश्वर्य प्राप्त करना यहां तक कि रातों–रात मालामाल बनने का व अपराध करके दण्ड से बचने का एक कारगर उपाय राजनीति बन गया है ऐसे में यदि हम राजनीति को समाज की सर्वोपरि सत्ता स्वीकार करते हैं, तो कोई अतिश्योक्ति नहीं।

प्राचीनकाल में यही राजनीति जनता के सुख सौभाग्य की अभिवृद्धि का आधार और त्यागमय जीवन का उदाहरण हुआ करती थी। शासक राजनीति करते समय अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के प्रति सजग रहते थे, मगर उसमें स्वार्थपरता कहीं भी नहीं झलकती थी। हर कदम पर ईमानदारी और कर्त्तव्यपरायणता का मंत्र साथ लेकर चलने वाले उन शासकों को आज भी राष्ट्र बड़े सम्मान के साथ याद करता है। उनमें राष्ट्र के लिए अपने आपको अनाम उत्सर्ग करने की भावना कूट–कूट कर भरी हुई थी, वे ही थे सही मायने में राष्ट्र के सृजेता। बड़ी विडम्बना की बात है कि वर्तमान समय में राजनीति का जो स्तर है, उसको उपमा देने के लिए कोई शब्द ही नहीं है। राजनीति का जो रूप आज सामने है वह स्वार्थ, कपट, और स्तरहीनता के सिवाय कुछ भी नहीं हैं। इस सारी गन्दगी को साफ करने के लिए, परिस्थितियों में बदलाव के लिए वर्तमान युग की महती आवश्यकता है कि जीवन में राष्ट्र निर्माण हेतु संस्कारों का समायोजन किया जाय ताकि, श्रेष्ठ नागरिक निर्मित किए जा सके जो राजनीति को वास्तव में नीतिगत स्वरूप प्रदान कर सके।[3] ढाई हजार साल पहले चाणक्य के जमाने में लोकतंत्र नहीं था। लाजिमी था कि वह ऐसा शख्स चुनें, जिसमें नेतृत्व के जन्मजात गुण हों और जिसे प्रशिक्षण देकर राजा के कर्तव्यों के लिए तैयार किया जा सके। आज हमारे देश में लोकतंत्र है। जनता ही अपने शासक चुनती है। आज वोट डालने वाला हर नागरिक चाणक्य है। लोकतंत्र में नागरिकों के कंधों पर यह जिम्मेदारी है कि वे चाणक्य की तरह योग्य और होनहार व्यक्ति को सरकार की जिम्मेदारी संभालने के लिए चुनें। नागरिक राजनेताओं में जिन गुणों की अपेक्षा करते हैं, वे उन गुणों से बहुत अलग नहीं हैं। निम्न वर्णित वे गुण है, जो देश की जनता अपने नेताओं में देखना चाहती है[4] :

(1) विनम्र और मृदुभाषी,
(2) सकारात्मक सोच,
(3) निर्णय क्षमता,
(4) विश्वसनीयता,
(5) जनता से जुड़ाव,
(6) शिक्षा,
(7) समय की पहचान आदि।

संस्कारों के वैज्ञानिक प्रभाव को आज विश्व में मनोवैज्ञानिकों द्वारा भी परीक्षण द्वारा व्यक्तित्व निर्माण की अनूठी कला के रूप में देखा जा रहा है। स्वीडन के ख्यातिलब्ध मनोविज्ञानी डॉ. डाल ओल्यू ने अपने देश के स्कूल–कॉलेजों के उद्दण्ड एवं दुस्साहसी छात्रों की मनोवृत्ति का अध्ययन बड़ी गहनता से किया है। इसके लिए उन्होंने बच्चों के माता–पिता, अभिभावक और अध्यापकों से भी संपर्क किया। अपने शोध निष्कर्षों को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने बताया है कि सर्वप्रथम संस्कारों का बीजारोपण बच्चों में पारिवारिक वातावरण के बीच माता–पिता, अभिभावकों के द्वारा सम्पन्न होता है। वे जैसे चाहें उन्हें गीली मिट्टी के सदृश ढाल सकते हैं। प्रायः उनमें भली–बुरी प्रवृत्तियों का बीज बहुत–कुछ उसके गर्भस्थ जीवन में ही जम जाता है। पैदा होने के बाद घरवालों के व्यवहार पर बच्चों का जीवन बहुत–कुछ निर्भर करता है।[5] इसी तरह की मान्यता इलिनोय विश्वविद्यालय के मनोविज्ञानी डॉ. लियोनार्ड डी इरोन की है। इस हेतु उन्होंने विशेष अध्ययन परियोजना का शुभारंभ किया, निष्कर्ष एक ही निकला है कि जो बच्चे बचपन से ही अधिक उग्र, उद्दंड, उच्छृंखल और झगड़ालू प्रवृत्ति के रहे होते हैं, वे 19 वर्ष की आयु तक स्कूल छोड़ कर अपराधी प्रवृति का शिकार बन जाते हैं और 30 वर्ष पार करके ऐसे बच्चों के जनक बन चुके होते हैं, जो कि उन्हीं की तरह उग्र मनोवृत्ति के होते है। इस प्रकार सामाजिक बुराई का एक विषम चक्र सामने आता है। डॉ. ओल्यू ने एक पुस्तक लिखी है– 'परपीड़क बच्चे तथा उसके शिकार बनने वालों की समस्याऐं हम क्या जानते है और हम क्या कर सकते हैं' के नाम से प्रकाशित किया है, जिसमें कुछ सूत्र संप्रेषित किए गए हैं, जिनका परिपालन करने से समस्या का समधान सरलतापूर्वक हो सकता है।[6] दूसरे अच्छे बच्चों के साथ सहयोग–सहकार की प्रवृत्तियों को विकसित करने, कुसंग से बचाने का प्रयत्न ऐसा है जो आगे चलकर भविष्य निर्माण में महती भूमिका निभाता है एवं एक श्रेष्ठ नागरिक राष्ट्र को प्रदान करता है जो राजनीति क्षेत्र की महत्वपूर्ण आवश्यकता है।[7]

वर्तमान में भारतीय समाज में, राजनीति में, आर्थिक क्षेत्र में, धार्मिक क्षेत्र में, नैतिक क्षेत्र में सम्पूर्ण परिवेश में जो भी न्यूनता, हीनता आ रही है। गिरावट, षडयन्त्र, नकारात्मक सोच, भ्रष्टाचार, बेईमानी, हिंसा, दुष्कर्म, दंगे, जालसाजी, व्याभिचार, पाखण्ड इन सभी परिस्थितियों में भारत की जनता सरकारो, स्वयंसेवी संस्थाओं, राजनेताओं, धार्मिक मठाधीशो या फिर मन्दिरों में बैठी पाषाण प्रतिमाओं को सहायता के लिए गुहार लगाती है जबकि उस जनता के पास वह करामाती चिराग है कि उसके दम पर वह इन सब समस्याओं से निजात पा सकती है बिना परमुखापेक्षी हुए।

हमारे ऋषियों ने इन विकट और भयावह परिस्थितियों से हमें बचाए रखने के लिए शोड्ष संस्कारों की पुनीतविधा प्रदान की है, लेकिन हम ज्यों–ज्यों शिक्षित होने लगे वैसे–वैसे ही पुरातन के नाम पर हमने अपनी समस्त परम्पराओं–संस्कारों को तिलांजली देना उनका अतिक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। हम शिक्षित बनकर चाँद

पर बस्ती बसाने की आकांक्षा में होड़ में जमीन पर रहना भूल गए। शिक्षा ने हमें नए तौर तरीके दिए बाहरी रूप में हम संवरते चले गए पर भीतर ही भीतर संकीर्णता ने हमें जकड़ लिया और हम चलते–चलते वर्तमान परिस्थितियों से आहत समाज में आ पहुँचे, जहाँ नेता भ्रष्ट–बेईमान है, शिक्षक स्वाभिमानहीन कर्तव्य विमुख है, धर्म के ठेकेदार वर्चस्व की लालसा में उलझे है, मातृशक्ति निरादर–बलात्कार–दुष्कर्म का दंश झेल रही है। चारों और लूट–खसौट का बाजार लगा है जहाँ भौतिक उन्नति ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का पैमाना है। उपरोक्त परिस्थितियों से बचने के लिए हम कानून–राजनेता–धर्मनेता–समाजनेतृत्वकर्ता भी न जाने कहाँ भटक रहे है। यहाँ भी विडम्बना है कि जो इस घटनाक्रमों–परिस्थितियों के लिए उत्तरदायी हैं, हम उन्हीं से इनका समाधान चाहते हैं।

वर्तमान में संस्कारों की परम्परा की हिमायत करने वाले कुछ व्यक्ति है, परन्तु शोड्ष संस्कारों की वकालत वे भी नहीं करते। उनका मानना है कि संस्कार तो एक साथ भी दिए जा सकते हैं, सिर्फ बचपन में अपितु समय–समय पर उसे संस्कारों द्वारा सही दिशा में बढ़ने की गति प्रदान की जाए। उसकी हीन आकांक्षाओं की बलवती बनने से रोक कर उच्च गुणवत्ता प्रदान करते हुए देवत्व की ओर अग्रेषित किया जावे। इस कार्य को मात्र संस्कार पूर्ण नहीं कर सकते इस हेतु तो शोड्ष संस्कार ही उपयुक्त साबित हो सकते हैं। भारत ही नहीं विश्व के हर घर–परिवार में प्रत्येक अजन्मे शिशु के प्रति इस परम्परा को अपनाया जाये, तो सम्भव है कि इस धारित्री पर वो कार्य किए जा सके, जो संयुक्त राष्ट्र संघ, मानवाधिकार आयोग एवं कोई धार्मिक संगठन भी न कर सका हो।

जब संस्कारिता पूर्वकाल में सकारात्मक सोच के नैतिक राजनैतिक समाज का निर्माण कर सकने में सक्षम थे, तो आज भी कारगार साबित हो सकते हैं, क्योंकि सर्वप्रथम एक श्रेष्ठ नागरिक का निर्माण अत्यावश्यक है, फिर उन्हीं नागरिकों से श्रेष्ठ गुण सम्पन्न संस्कारित, चरित्रवान, निष्ठावान राजनेता शासन सत्ता के अधिकारी बने तो समाज का परिदृश्य भयावह नहीं शीतल–श्रेष्ठ व सभ्य होगा, जिसका धरातल राजनीतिक विचारधारा में संस्कारों के समायोजन से ही हो सकेगा। **निष्कर्ष :**

वर्तमान में बढ़ती राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक, धार्मिक, मूल्यहीनता, भ्रष्टता, नैतिक पतन आदि का उन्मूलन करने हेतु संस्कार परम्परा ही कारगार औषधि है। आज सम्पूर्ण विश्व का परिदृश्य असंख्यों समस्याओं से आच्छादित है। मनुष्य मानवता के पतन के संरजाम जुटा रहा है, इन परिस्थितियों के समाधान में राजनीति–सत्ता, शासन–धर्म या दण्ड सक्षम नहीं हो पा रहे, इसका एक मात्र समाधान व्यक्ति का मानसिक व वैचारिक उत्थान है, जो संस्कारों द्वारा ही सम्भव है। भारतीय संस्कृति की सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति निर्माण की वैज्ञानिक पद्वति संस्कार प्रक्रिया को पुर्नस्थापित–विश्लेषित कर इसके लाभो का प्रचार किया जाए, राजनीति के क्षेत्र में इससे श्रेष्ठ नागरिक, अधिकारी व राजनेताओं की प्राप्ति सम्भव है।

संदर्भ :

(1) छांदोग्य उपनिषद, 6.4.10.

(2) *समाकान्त, आगिरस : भारतीय चेतना एवं चिन्तन, पृ. 49.*

(3) *वाई, सिंह : धर्म, सामाजिक सदभाव और राष्ट्रीयता–सम्पूर्ण क्रान्ति की अवधारणा, पृ. 108–109.*

(4) *हमारा नेता कैसा हो?, दैनिक भास्कर (दैनिक समाचार पत्र), रंसरंग, दिनांक 18 मार्च, 2012.*

(5) *सुसस्कृत युवा पीढ़ी कैसे बने?, युग निर्माण योजना, 2006, पृ. 10.*

(6) *सुसस्कृत युवा पीढ़ी कैसे बने?, युग निर्माण योजना, 2006, पृ. 11.*

(7) *सुसस्कृत युवा पीढ़ी कैसे बने?, युग निर्माण योजना, 2006, पृ. 12.*

❁❁

A National, Registered & Refereed Monthly Journal : Research Paper
Research Link - 172, Vol - XVII (5), July - 2018, Page No. 80-81
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782
Since March 2002

साहित्य एवं नृत्यकला का सह-सम्बंध

प्रस्तुत शोधपत्र में साहित्य एवं नृत्यकला के सह-सम्बंध कों अध्ययन किया गया है। जिस प्रकार नृत्य प्रदर्शन में प्रसंग होगा, उसी के अनुकूल रनाओं को लेकर हम हमारी भावाभिव्यक्ति को और अधिक सशक्त बना सकते हैं। जितना अच्छा साहित्य नृत्य में अभिनय हेतु उपलब्ध होगा, भावों की अभिव्यक्ति भी उतनी ही अधिक निखरेगी और दर्शकों को भी उतना ही अधिक आनन्द प्राप्त होगा। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि नृत्य व साहित्य का आपस में घनिष्ठ सम्बंध है। एक-दूसरे के बना ये कला अधूरी है। इन दोनों कलाओं का संयुक्त प्रभाव मानव हृद्य को आनन्दित कर देता है।

योगिता माण्डलिक

साहित्य एवं नृत्य दोनों ही कलाएँ एक दूसरे की पूरक है। नृत्य व साहित्य दोनों ही भावाभिव्यक्ति के साधन है। दोनों के ही माध्यम से मनुष्य अपने भावों को व्यक्त करता है। वह विधा जिसमें गीत के शब्द हों, अंगों का सुन्दर संचालन के साथ भावमुद्रा हो एवं पैर ताल–लय का निर्वहन करते हो वही सम्पूर्ण नृत्य है।

जहाँ सामान्य रूप से नृत्य, सहृदय की खुशी को अभिव्यक्त करने की स्वाभाविक क्रिया है। वहीं साहित्य एक ऐसी कला है, जिसमें शब्दों के द्वारा भावों को प्रकट किया जाता है। गद्य, पद्य व काव्य साहित्य के ही प्रकार है। काव्यकला में कवि शब्द अथवा भाषा को छन्द, अलंकार आदि से सजा–संवारकर रंजकता की सृष्टि करता है।

नृत्यकला में भावाभिव्यक्ति के लिए शब्दों का सहारा लिया जाता है। नर्तक सुरताल में निबद्ध छन्द, अलंकारादि से युक्त काव्यगत शब्दों को अंगभंगिमाओं एवं भावमुद्रा द्वारा प्रस्तुत करता है जिससे रसानन्द की सृष्टि होती है। साहित्य के प्रयोग से नृत्य में भाव सम्प्रेषण की शक्ति और अधिक बढ़ जाती है।

काव्य एवं नृत्य दोनों ही गतिशील कलाएँ है। काव्य के लिए शब्द अनिवार्य है, वहीं नृत्य के लिए स्वर व ताल आवश्यक है। शब्द एवं अर्थ ये दोनों ही काव्य के अनिवार्य अंग है। शब्द, काव्य के बाह्य आवरण होते हैं व अर्थ, आन्तरिक अनुभुति। कथक के सन्दर्भ में आंगिक अभिनय बाह्य आवरण है व आन्तरिक अनुभुति का माध्यम है, सात्विक अभिनय। काव्य में प्रयुक्त शब्द व उनके अर्थ की सौन्दर्यपूर्ण रचनात्मकता पर ही नृत्य की भावाभिव्यक्ति की सुन्दरता निर्भर करती है।

"कहा जा सकता है कि भाषा आधारित अभिव्यक्ति के आधार पर काव्य का कथक नृत्य में स्वतन्त्र विकास हुआ है। कथक में गीत अथवा नृत्य के साथ काव्य, पद, छन्दों को भी स्थान प्राप्त है। प्रयोग के क्षेत्र में भी गीत का विस्तार क्षेत्र केवल स्वर तथा लय तक ही सीमित नहीं रहा है, अपितु सभी प्रकार के गीत प्रकारों या प्रबंधों का स्वरूप वास्तव में पद पर ही अवलम्बित रहा है। पद का निश्चित अर्थ, जब स्वर ताल से होते हुए बुद्धि ग्राह्य अर्थ को हृदय ग्राह्य संवेदनाओं में बदलता है तभी गीत की उत्पत्ति होती है। इन संवेदनाओं की व्यापकता आंगिक चेष्टाओं अथवा नृत्य के माध्यम से और अधिक रंजकता पूर्ण हो जाती है। अर्थात् पद, गीत, वाद्य और नृत्य का सुनियोजित प्रयोग अलौकिक आनन्द का आभास कराती है। पद का वाचिक अभिनय के रूप में नृत्य में समावेश हो जाता है और इसी पदार्थ की भावाभिव्यक्ति वाचिक के साथ–साथ आंगिक तथा सात्विक अभिनय के द्वारा की जाती है।"(1)

आचार्यों के मतानुसार :

नृत्य गीताभिनयं भावतालयुतं भवेत्।
आस्येनालम्बयेद् गीत हस्तनार्थ प्रदर्शयेत्।।

एक और गीत, नृत्य की अनिवार्यता है वहीं दूसरी ओर नृत्य, काव्य का प्रेरणास्त्रोत है। काव्य में निहित, शब्द, छन्द, अलंकार, कवि–कल्पना आदि रस सृष्टि के लिए समर्थ होते हैं, परन्तु जब काव्य में निहित भावों को नृत्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है, तब रसानन्द द्विगुणित हो जाता है।

हिन्दी साहित्य काल में ऐसे अनेक कवि हुए हैं, जिनकी तात्कालीन विषयों पर आधारित रचनाओं का प्रसंगानुकूल प्रयोग शास्त्रीय नृत्यों में किया जाता आ रहा है। जैसे भक्तिकाल के सूरदास, मीरा, तुलसीदास, रीतिकालीन, बिहारी, केशव, मतिराम, सेनापति, चरनदास आधुनिक युग के कवि जयशंकरप्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा आदि ऐसे प्रमुख कवि हैं, जिनका काव्य शास्त्रीय नृत्य में भावाभिव्यक्ति के लिए बहुत

शोधार्थी, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, किला भवन, इन्दौर (मध्यप्रदेश)

उपयुक्त साधन है। रस, भाषा एवं विषय की दृष्टि से इनकी रचनाएँ बहुत ही उत्तम है।

भक्ति काव्य में जहाँ भक्ति, प्रेम, दास्य, शांत जैसे तत्वों के साथ ही तात्कालीन ब्रज भाषा का निखरा रूप देखने मिलता है वहीं रीतिकालीन काव्य में श्रृंगार रस से ओतप्रोत रचनाएँ प्राप्त होती है। आधुनिक युग में वीर रस प्रधान काव्य की अधिकता है।

जिस प्रकार नृत्य प्रदर्शन में हमारा प्रसंग होगा। उसी के अनुकूल रचनाओं को लेकर हम हमारी भावाभिव्यक्ति को और अधिक सशक्त बना सकते हैं। जितना अच्छा साहित्य नृत्य में अभिनय हेतु उपलब्ध होगा, भावों की अभिव्यक्ति भी उतनी ही अधिक निखरेगी और दर्शकों को भी उतना ही अधिक आनन्द प्राप्त होगा।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नृत्य व साहित्य का आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है। एक–दूसरे के बिना ये कला अधूरी है। इन दोनों कलाओं का संयुक्त प्रभाव मानव हृदय आनन्दित कर देता है।

❁ ❁

शोध-पत्र प्रकाशन सम्बंधी सूचना

'रिसर्च लिंक' (राष्ट्रीय मासिक शोध जर्नल) में शोधपत्रों के प्रकाशन हेत किसी भी प्रकार का प्रकाशन शुल्क नहीं लिया जाता है। शोधपत्र प्रकाशन हेतु आप शोधपत्र की सॉफ्टकॉपी हमारे ई-मेल आईडी - researchlink@yahoo.co.in पर भेज सकते हैं। शोधपत्र प्राप्त होते ही रेफरी प्रकाशन हेतु स्वीकृत, अस्वीकृत अथवा संशोधन हेतु परामर्श प्रदान करता है। शोधपत्र प्रकाशन योग्य होने पर ही केवल शोधछात्रों, प्राध्यापकों से सदस्यता शुल्क लिया जाता है। सदस्यता शुल्क का भुगतान ऑन-लाईन हमारे खाते में सीधे किया जा सकता है। बैंक सम्बंधी जानकारी निम्नानुसार है -

बैंक : स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया

ब्रांच : ओल्ड पलासिया, इन्दौर,

कोड - **SBIN 000 3432**

खाते का नाम : रिसर्च लिंक,

खाता नंबर - **63025612815**

भुगतान की मूल रसीद, शोध-पत्र एवं सीडी के साथ कार्यालयीन पते पर भेजना अनिवार्य है।